Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Humanity
ISSN: 2279-0233

Year-1 | Issue-1 | April-May 2012

'गोदान' उपन्यास मे दलित-प्रसंग

प्रेमचंद शिवरानी देवी से कहते हैं –
"मैं महत्मा गांधी का चेला हूँ.... जो काम वह आंदोलन करके रहें, वह मैं कलम के माध्यम से कर रहा हूँ।"

भारतीय भाषाओं में मराठी भाषा में दलित-लेखन दशकों पहले लिखने का प्रारंभ हुआ। यही लेखन भारत की सभी भाषाओं को प्रभावित, बल्कि आंदोलित किया। दलित-लेखक और गैर दलित-लेखकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से दलित–साहित्य की अवधारणाएँ रखी हैं, पर लेखक की अपनी अनुभूति-चेतना की अभिव्यक्ति ही साहित्य की रचना का स्वरूप धारण करती है। वर्गीय-चेतना पर लिखनेवालों के प्रेरणास्रोत – मार्कस, एंगेल्स, लेनिन के विचारों से प्रभावित किया, तो मरोठी में दलित-साहित्य लिखनेवालों के प्रेरणास्रोत ज्योतिबा फूले (1827-1890) एवं डॉ. आंबेडकर (1891-1956) के सामाजिक विचार और उनकी जागृतिकता ही है। दलित-लेखन में सामाजिक यथार्थता की तीव्रता गहरी देखने को मिलती है, लेकिन मूलस्रोत – वर्गीय-चेतना, वर्ग-संघर्ष, छूआछूत, अस्पृश्यता, और निम्नवर्गीयता है।

दलित और दलित-साहित्य क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में कहें तो – इस समाज में जाति के लोग हो या स्त्रियाँ हो उस पर होते अन्याय, बलात्कार की चित्कारें उसके अन्य शोषण से पीडित दलित है। और उसके प्रति जो करुण दया का भाव पैदा करनेवाला साहित्य ही दलित-साहित्य है। मराठी साहित्य के प्रमुख लेखक नामदेव ढसाल दलित की परिभाषा इस प्रकार देते हैं –
"दलित यानि अनुसूचित जातियाँ, बौद्ध, कष्ट उठानेवाली जनता, मज़दूर, भूमिहीन मज़दूर, गरीब किसान, खानाबदोश जातियाँ, आदिवासी 'दलित' शब्द की यह जाति निरपेक्ष व्यापक परिभाषा है।"(मराठी साहित्य परिदृश्य, चंद्रकान्त बांदिवडेकर, पृ. 186)

मेरी दृष्टि से तो समाज में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन से अस्पृश्यता का भुक्तभोगी समाज ही दलित है। सन् 1840-42 तक सुधारवादी विचारधारा प्रवर्तित हुई जिसमें बालशास्त्री जांभेकर से लेकर सुधारवादी पंडित परंपरा में दादाबा पांडुरंग, लोकहितवादी ज्योतिबा फूले, विष्णुबा ब्रह्मचारी, न्यायमूर्ति रानडे और डॉ. भांडारकर ने विशेष योगदान दिया। उसके बाद भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था पर आघात करनेवाले दो व्यक्तित्व राष्ट्रीय स्तर पर उभरे – एक गुजरात में गांधीजी और महाराष्ट्र में डॉ. आंबेडकर। आंबेडकर ने महाराष्ट्र में दलितोद्धार के शक्तिशाली आंदोलनकार रहे। उन्होंने महाड के चबदार तालाब पर किया सत्याग्रह अस्पृश्यों के मृतवत् भाग को चेतना देकर मानवीयता और सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार दिया। उसके बाद नासिक के कालाराम मंदिर प्रवेश आंदोलन का नेतृत्व किया। उन्होंने विशेष रूप से महार, चमार, डोम जाति और ज्योतिबा फूले ने मराठा, माली, और तैली जाति में सम्मानपूर्ण जीने का अधिकार दिया। 1927 में उन्होंने 'मनुस्मृति' का दहन किया। उन पर फ्रेंच की राज-क्रान्ति का मानवमात्र के त्रिसूत्री संदेश - 'स्वातंत्र्य, समता और बंधुवा' का प्रभाव पड़ा। महाड के दूसरे अधिवेशन में उन्होंने समस्त हिन्दू समाज की समानता का घोषणापत्र जारी किया। स्वाधीनता आंदोलन (1929) मंदिर प्रवेश (नासिक सत्याग्रह) (1930), गोलमेज संमेलन (1931), पूना पैकेट (1932), जाति-व्यवस्था उन्मूलन (1933), धर्म परिवर्तन (1935), नेहरू की अध्यक्षता में समाजवाद की घोषणा हुई उसके अंतर्गत गांधीजी और कांग्रेस को अस्पृश्यता उन्मूलन घोषणा-पत्र पर चुनाव लड़ने की चुनौती दी। इन चुनौती भरी उपरोक्त घटनाओं से स्वाधीनता के नूतन परिवेश में निश्चित रूप से दलितों की आत्म-परितुष्टि की अभिव्यक्ति मिली है उसमें कोई संदेह ही नहीं है।

उपरोक्त चर्चा करने पर लगता है कि सन् 1936 तक भारत देश में महाजनी सभ्यता, गरीबी, अंग्रेजी सभ्यता, अशिक्षा, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों को नज़र अंदाज कर के देखें तो प्रेमचंदजी का 'गोदान' (1936) उपन्यास में दलित विमर्श पर दृष्टिपात करे तो प्रेमचंदजी दो आंदोलनों के साक्षी रहें – पहला स्वामी अछूतानंद का हिन्दु आंदोलन (पूर्व उत्तरप्रदेश), दूसरा डॉ. आंबेडकर का आंदोलन (महाड) और गांधीजी के अन्य आंदोलनों। प्रेमचंद यथार्थवाद और आदर्शवाद, कला, कला के लिए और कला जीवन के लिए, ऊँची और नीची जातियों के जीवन की वास्तविकताओं के बीच, गांधीजी और आंबेडकर के बीच संचरण करते रहे हैं। वे

दलितों के एक मात्र प्रतिनिधि है। वे दलितों की पीड़ा से और सामाजिक व्यवस्था में सुधार करने की अमर्थता को लेकर वे खूब व्यथित थे। गांधीजी ने दलितोद्धार और मंदिर-प्रवेश जैसी प्रक्रिया पर जोर देने का प्रयास किया, वैसे ही प्रेममंद ने अपने उपन्यासों में स्थान दिया।

'गोदान' (1936) उपन्यास प्रेमचंद के अनुभव की हल्की आँच में देर तक पकी रचना है। इसमें दलित समस्या नहीं है, पर दलित-प्रसंग है। इसकी पृष्ठभूमि प्रथम विश्वयुद्ध का उत्तरकाल और 1929 का मानसिक दबाव। इस उपन्यास में गांधी-विचार पूरी निष्ठा से प्रतिबिम्बित करता है। 'गोदान' शब्द में 'गो' का एक अर्थ मनुष्य की इन्द्रियाँ या उसके हाथ-पैर भी है। यहाँ उपन्यास का प्रतीकात्मक – एक भ्रष्ट और पतित समाज की वेदी पर होरी के बलिदान की कहानी है। इसमें होरी गाय की तरह लाचार और कमजोर है यानी गाय होरी का भाई ही है। और वह कुटिल रूप से शिकार होती है। समग्र उपन्यास में होरी, गोबर, धनिया, पुदिना, घसेटू आदि वर्ग की दृष्टि से जो हो, पर हमें दलित दिखाई देते हैं। ऐसे नाम दलितों में मिलते हैं।

इस उपन्यास में सिलिया और मातादीन के बीच जारकर्म दलित-प्रसंग में चमारों का विद्रोह बताया है। इसमें चमार जाति की नाक कटती है, क्योंकि ब्राह्मण के पास जाने के साथ ही वह चमारिन कहलाती है। यहाँ चमारों का तर्क है कि तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते।, पर हम तुम्हें चमार तो बना सकते हैं। विशेष रूप से यह कथा 'जार कर्म' प्रसंग को उठाती है। यही प्रसंग पर बीसवीं शताब्दी में दलित मुक्ति आंदोलन का यह प्रभाव है। मातादीन (उच्चवर्ण), सिलिया (अछूत) को प्रेम करता तो है साथ में उसे भोगता भी है, लेकिन उसके साथ विवाह नहीं कर सकता। इस बात पर सिलिया की माँ मातादीन के पिता से कहती है –
"तुम बड़े नेमी धरमी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पीओगे। यही चुडैल है कि सब सहती है। मैं तो ऐसे आदमी को माहुर दे देती। सिलिया का पिता ललकारते हुए कहता है – तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। जब यह समरथ नहीं है तो फिर तुम भी चमार बनो। हमारे साथ खाओ-पीओ, हमारे साथ उठो-बैठो। हमारी इज्जत लेते हो, तो अपना धरम हमें दो।" (गोदान, पृ.245)

यहाँ प्रेमचंद उच्चवर्गीय और अछूत जाति के बीच छूने का और पानी पीना अधर्म समझा जाता है, वही मातादीन (बल्कि समग्र हिन्दु समाज के उच्चवर्गीय) जैसे विचारों को स्थापित किया है, जो आज समकालीन समाज जीवन में मौजूदा है। सिलिया और मातादीन के अवैध संबंध की घटना समग्र भारत वर्ष के हिन्दु समाज की है। सिलिया जैसी दलित स्त्रियाँ ही शिकार होती हैं। इसी दलित-मुक्ति का आंदोलन (1936) का प्रभाव यहाँ प्रेमचंदजी ने बताया है।

दलित मातादीन के मुँह में हड्डी ठूँसकर उसका सर्वस्व यानी उसका धर्म भ्रष्ट कर देते हैं। यहाँ प्रेमचंद ब्राह्मणों के ब्राह्मणत्व पर चोंट करते हैं, क्योंकि ब्राह्मण चमारों को 'ब्राह्मण' बना नहीं सकते, पर चमार ब्राह्मणों को 'चमार' वनबना सकते हैं। यहाँ मातादीन के जरिए कुलीन लोगों के कुकर्मों और कमजोर दलितों और किसानों के शोषण को अनावृत करते हैं। यहाँ प्रेमचंद मातादीन के मुँह में हड्डी का टुकड़ा डालकर धर्म के पाखंड को चुनौती देते हैं कि हजारों साल से जैसे रहते आये हैं अब वैसे रहने के लिए तैयार नहीं है, उनमें नई चेतना का उदय हो रहा है।

चमारिन सिलिया को मातादीन छोड़ देता है, फिर भी उसके प्रति सिलिया वफादार रहती है। और दो दिलों को जोड़नेवाले अपने बच्चे को अच्छी तरह से लालन-पालन करती है। लेकिन संजोगवश सिलिया अपने बच्चे को बचा नहीं पाती, पर अपने प्रेमी दातादीन को स्वीकार लेती है। इस घटना में 'ब्राह्मण' और 'चमार' शब्दों की नई परिभाषा दी है। सिलिया अपने स्वीकार के बाद दातादीन से कहती है कि गाँववालों और मातादीन क्या कहेंगे, तब दातादीन कहता है –
"जो भले आदमी है, वह कहेंगे, यही इसका धरम था। जो बुरे हैं, उनकी मैं परवा नहीं करता।
और तुम्हारा खाना कौन पकाएगा?
मेरी रानी सिलिया।
तो ब्राह्मण कैसे रहोगे?
मैं ब्राह्मण नहीं, चमार ही रहना चाहता हूँ, जो अपना धरम पाले, वही ब्राह्मण, जो धर्म से मुँह मोड़े, वही चमार है।" (गोदान, पृ.338)

यहाँ प्रेमचंद दातादीन का कर्तव्य-बोध, ऊँची जाति में जन्म लेना – यह मनुष्य के नये धर्म की परिभाषा दिखाते हैं। उपर्युक्त परिभाषा प्रेमचंद होरी के माध्यम से पुरुष-धर्म की बात करते हैं –
"एक बार किसी का हाथ थाम लेने के बाद फिर भी न छोड़ना।"(गोदान, पृ.335)

सिलिया का व्यक्तित्व क्रांतिकारी है। प्रेम में अखंड आत्मविश्वास रखनेवाली है। जब उनके माँ-बाप और भाई उउनके प्रेम में विध्न रूप होने के बावजूद वह कहती है –
"यह लोग क्यों उसके बीच में बोलते हैं?न वह जैसे चाहती है, रहती है, दूसरों से क्या मतलब?" (गोदान, पृ.209)
वह किसी भी किमत पर मातादीन का साथ छोड़ना नहीं चाहती, लेकिन मातादीन पर बोझ नहीं बनना चाहती। वह मातादीन से कहती है –
"मजदूरी करूँगी, भीख माँगूँगी, लेकिन तुम्हें न छोड़ूँगी।"नही ब(गोदान, पृ.211)

पूरे उपन्यास में सिलिया के द्वारा भारतीय स्त्रियाँ ऊँची जाति के पुरुषों द्वारा शोषित-पीडित होने के बावजूद वह अकेली ही संघर्षशील चरित्र है। इसके अलावा अन्य दलित स्त्री-पात्रों द्वारा प्रेमचंदजी दलितों और दलित स्त्रियों की स्थिति, सस्त्री-संबंधों और उनके विचार, पुरुषों द्वारा स्त्रियों को शोषण और समाज में स्त्रियों की हैसियत का बयान किया है।

इस उपन्यास में नारी संघर्ष अपने लिए नहीं, बल्कि व्यवस्था की विद्रूपता के प्रति है। इसमें दूसरा दलित-प्रसंग धनिया का है। धनिवह भी एक दलित संघर्षशील स्त्री है। जब वह आर्थिक शोषण और जर्जरित सामाजिक परंपराओं के विरुद्ध आवाज उठाती है। गर्भवती झुनिया को स्वीकार करती हुई धनिया दातादीन को कहती है –
"हमको कुल परतिष्ठा प्यारी नहीं महाराज, कि उसके पीछे एक ही हत्या कर डालते। ब्याहता न सही, पपर उसकी बाँह तो पकड़ी है मेरे बेटे ने ही। किस मुँह से निकाल देती? वही काम बड़े-बड़े करते हैं, मुदा उनसे कोई नहीं बोलता, उन्हें कलंक ही नहीं लगता। वही काम छोटे आदमी करते हैं तो उनकी मरजाद बिगड़ जाती है। नाक कट जाती है। बड़े आदमियों को अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी होगी, हमें तो अपनी नाक इतनी प्यारी नहीं।"वर(गोदान, पृ.189)

होरी जब झिंगुरसिंह के चौपाल में अनाज का ढेर करता है, तब धनिया होरी को कहती है –
"होरी पर पहल रात तक खलिहान से अनाज ढो-ढोकर झिंगुर सिंह की चौपाल में डेढ-दो मन जौ रह जाता है, तो धनिया दौड़कर उसका हाथ पकड़ लेती है। सीधे—से टोकरी रख दो, नहीं आज सदा के लिए नाता टूट जाएगा। कह देती हूँ।"(गोगोदान, पृ.109)

यहाँ प्रेमचंदजी धनिया का टोकरी पकड़ना प्रसंगदाटोक द्वारा अपने विचारों के प्रति एक ग्रामीण स्त्री का जगना बताया है। वही उनकी अस्तित्व की पहचान है। अन्याय के खिलाफ धनिया का विद्रोह गांधीवादी असहयोग से बहुत मिलता-झुलता है। जैसे –जै
"हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें। उसके तलवें क्यों सहलाएँ।"(गोगोदान, पृ.7)

समग्र उपन्यास में होरी का जीवन भी दलित वर्ग का है। जिस तरह से उपन्यास के आरंभ से लेकर अंत तक बेगार और गुलामी में उच्चवर्गीय लोग जो दुर्दशा करते हैं यही प्रसंग सन् 1936 की दलित जिदंगी थी। होरी के पास ज़मीन होने की वजह से विद्रोह नहीं कर सका, क्योंकि उनको ज़मीन बचाये रखनी थी। आज होरी जैसे अनेकों लोग हैं, जो शोषित-पीड़ित हैं। जैसे –
"यही दशा होरी की न थी। सारे गाँव पर यह विपत्ति थी। ऐसा आदमी भी नहीं, जिसकी रोनी सूरत न हो, मानो उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते-फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे – इसलिए कि घिसना और घुटनाउनकी तकदीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमंग – जैसे उनके जीवन के सोते सूख गये हों और सारी हरियाली गुस्सा गई हो।उ"(गोदान, पृ.85)

अंत में प्रेमचंद राय साहब और खन्ना के प्रसंग के जरिए देशी पूँजीपतियों के बीच की सामंती साँठ-गाँठ और विदेशी शोषकों के बीच का गठजोड़ दिखाया है।

इसी तरह पूरे उपन्यास में प्रेमचंद ने सिलिया और मातादीन की कथा के जरिए दलित-प्रसंग और उनकी समस्याओं को उजागर करने का प्रयत्न किया है। दातादीन ब्राह्मण के स्थान पर मनुष्य के धर्म-विचार का रूपांतरण की यह परिकल्पना के द्वारा समस्या का भी समाधान भी बताया है। आज के समकालीन समय में होरी, सिलिया, धनिया, झुलिया, मोना – जैसे बलोग बहुसंख्यक हैं और शोषक वर्ग वही है, जो होरी के समय में था। इन 62 सालों में शोषक वर्ग का विस्तार हुआ हैं और वह एक वर्ण या जाति तक सीमित नहीं रहा है। वर्गविहीन और जातिविहीनहु समाज के निर्माण का मूल प्रस्थान बिंदु – जुलिया के शब्दों में – "सर्वस्व तो तभी पाओगे, जब अपना सर्वस्व दो।"

अंत में हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक नलिन विलोचन शर्मा 'गोदान' के बारे में कहते हैं –

"नदी के दो तट असंबद्ध दीखते हैं, पर वस्तुत: वे असंबद्ध नहीं रहते – उन्हीं केके बीच जलधारा बहती है। इसी तरह गोदान की असंबद्ध-सी दीख पड़नेवाली दोनों कहानियों के बीच से भारतीय जीवन विशाल जलधारा बहती चलती जाती है। भारतीय जन-जीवन का जो एक ओर नागरिक है और ग्रामीण ओर जो एक साथ अत्यंत प्रप्राचीन भी है और जागरण के लिए छटपटा भी रहा है,पवे इतने बड़े पैमाने पर इतना यथार्थ चित्रण, हिन्दी मेंमें ही क्यों, किसी भी भारतीय भाषा के किसी उपन्यास में नहीं हुआ है।"क्मे (संवाद और हस्तक्षेप, पृ.149)

****

डॉ. अमृत प्रजापति
हिन्दी विभागाध्यक्ष
सरकारी आर्ट्स एवं कॉमर्स कॉलेज, कडोली

Copyright © 2012 - 2016 KCG. All Rights Reserved. | Powered By : Knowledge Consortium of Gujarat